**रिपोर्टेबल**

**भारत का सर्वोच्च न्यायालय**

**आपराधिक अपीलीय अधिकारिता**

आपराधिक अपील संख्या 763/2017

बृजेंद्र सिंह व अन्य - अपीलकर्ता

बनाम

राजस्थान राज्य - प्रतिवादी

**निर्णय**

**ए. के. सिकरी, न्यायाधीश**

1) इस मामले में तीन अपीलकर्ताओं को विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, की अदालत द्वारा समन किया गया है, जो प्राथमिकी संख्या 53/2000 के संबंध में विचारण कर रही है और जिसमें भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) की धारा 147, 148, 149, 323, 448, 302/149 के साथ-साथ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (एस.सी.एस.टी. एक्ट) की धारा 3 और 3 (2) (वी) के तहत अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए हैं।

आरोप-पत्र में अपीलकर्ताओं को अभियुक्त नहीं बनाया गया था। आरोप-पत्र में जिन लोगों को अभियुक्त बनाया गया था, उनके खिलाफ आरोप तय किए गए थे और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य दर्ज किए जा रहे हैं। अपीलार्थियों को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) की धारा 319 के तहत अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ मुकदमे के विचारण में अतिरिक्त अभियुक्त के बतौर समन किया गया। विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता हरकेश मीणा द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत दायर एक प्रार्थना पत्र पर आदेश दिनांक 06.10.2015 पारित किया है। इस आदेश को अपीलकर्ताओं के द्वारा उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी किंतु, उच्च न्यायालय ने 11.01.2016 को अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया है।

2) प्राथमिकी और अन्य व्यक्तियों के खिलाफ मामला दर्ज करने के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शिकायतकर्ता द्वारा आवेदन दायर करने से संबंधित तथ्यात्मक विवरण और उसमें दिए गए आदेश निम्नानुसार हैंः-

लिखित शिकायत के आधार पर दिनांक 29.04.2000 को रात्रि 10.30 बजे भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 323, 448, 302/149 के साथ-साथ अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3 और 3 (2) (v) के अंतर्गत प्राथमिकी संख्या 53/2000 दर्ज की गई थी। इस शिकायत में, शिकायतकर्ता अभिकथित किया है कि 29.04.2000 को

अपराह्न लगभग 3:00 बजे जब वह अपने खेजरा कुएं पर था और अपने मवेशियों को पानी पिला रहा था, तो अपीलकर्ताओं सहित कुछ लोग जो उसके गांव के थे, शिकायतकर्ता को मारने के इरादे से अपने हाथों में कुल्हाड़ी, लाठी, सब्बल (लोहे की छड़) और चाकू लेकर वहां आए थे। उन्हें देखकर, शिकायतकर्ता वहां से भाग गया और अपने चाचा (नाथू) के घर आया और जोर से चिल्लाया। उसके चाचा घर के सामने सो रहे थे और लखपत नीम के पेड़ के नीचे सो रहा था। जैसे ही वह छप्पर में आया, प्रताप सिंह ने पीछे से उस पर लाठी से प्रहार किया, जो उसकी पीठ पर लगा। शिकायतकर्ता भरतलाल के घर भाग गया। बृजेंद्र सिंह ने उस समय सो रहे उसके चाचा नाथू के सिर पर सब्बल से मारा और प्रताप ने अपने चाचा के कान के ऊपर कुल्हाड़ी से मारा। इसके बाद इन सभी आरोपियों ने लाठीयों से मारना शुरू कर दिया। लखपत ने स्वयं को बचाने के क्रम मे भागने की कोशिश की। इन लोगों ने उसकी भी लाठी-डंडों से पिटाई कर दी। जब शिकायतकर्ता का बड़ा भाई उन्हें बचाने गया, तो इन आरोपियों ने उसे भी लाठी-डंडों से पीटा। इस बीच उनकी पत्नियां, उनके बेटों की पत्नियां भी आई थीं। उनके साथ तलाबका के रामू ब्राह्मण के पुत्र ऋषि और जयपुर के जगदीश सिंह के भतीजे भानु भी उनके साथ थे। आरोपियों द्वारा पीटे जाने के कारण शिकायतकर्ता के चाचा नाथू की मौके पर ही मौत हो गई। इसके बाद आरोपी वहां से भाग गए थे। इस घटना को कई ग्रामीणों ने देखा था। प्राथमिकी में, अपीलकर्ताओं को भी आरोपी व्यक्तियों के रूप में नामित किया गया था।

3) प्राथमिकी दर्ज की गई और अनुसंधान अधिकारी (आईओ) द्वारा मामले का अनुसंधान किया गया था। अनुसंधान के दौरान, अपीलकर्ताओं से भी पूछताछ की गई थी। उन्होंने कहा था कि वे जयपुर में रह रहे हैं और घटना के समय वे जयपुर में थे। इस प्रकार, इन व्यक्तियों द्वारा घटना के समय अन्यत्र उपस्थित होने का तर्क दिया गया। अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 पुलिस सेवा में हैं और प्रासंगिक समय पर वे जयपुर में तैनात थे। अपीलकर्ता संख्या 2 जगदीश ने यातायात पुलिस ड्यूटी पर रहते हुए अपना पैर खो दिया, अपीलकर्ता संख्या 3 भानु अपीलकर्ता की बहन का बेटा है और उसने दावा किया कि वह भी जयपुर में था। पुलिस अनुसंधान के बाद और अपीलार्थियों बृजेंद्र, जगदीश (जिन्होंने यातायात पुलिस ड्यूटी का निर्वहन करते हुए अपना पैर खो दिया था) और भानु के घटना के समय अन्यत्र उपस्थिती के संबंध में साक्ष्य पर विचार करने के बाद, अपीलार्थियों के खिलाफ कोई पर्याप्त और विश्वसनीय साक्ष्य नहीं पाया और इसलिए, उनके खिलाफ कोई चालान दायर नहीं किया गया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 178 (8) के तहत अनुसंधान लंबित रखा जब विचारण न्यायालय ने पुलिस द्वारा कोई चालान प्रस्तुत किए बिना, मामले का संज्ञान लेने का निर्देश दिया, तो अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष एकल पीठ आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 505/2000 दायर किया गया और उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 16.04.2009 द्वारा पुनरीक्षण को

स्वीकार किया व विचारण न्यायालय के दिनांक 09.06.2000 के आदेश को रद्द कर दिया। उच्च न्यायालय ने, हालांकि, यह स्पष्ट कर दिया कि दिनांक 16.04.2009 का उक्त आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन अभियुक्तों की श्रेणी में किसी भी व्यक्ति को जोड़ने के लिए सत्र न्यायालय की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।

4) उस अवधि के दौरान जब एकल पीठ आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 505/2000 उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी तब पुलिस इस निष्कर्ष पर पहुंची कि अपीलार्थी घटना में शामिल नहीं थे। पुलिस ने अनुसंधान के बाद, अपीलकर्ताओं के खिलाफ मुकदमे को बंद करने की अंतिम रिपोर्ट तैयार की, जिसे एसपी द्वारा अनुमोदित किया गया था इस तरह, अनुसंधान पूरा करने के बाद, पुलिस ने केवल अन्य अभियुक्त भँवर सिंह, प्रताप सिंह और शंभू सिंह के खिलाफ चालान पेश किया।

5) हालांकि, चालान दाखिल करने के समय, पुलिस ने अनुसंधान को लंबित रखा, बाद में यह निष्कर्ष निकला कि अपीलकर्ता शामिल नहीं थे और अपीलकर्ताओं के खिलाफ मामले को बंद करने की अंतिम रिपोर्ट दायर की गई थी। विचारण न्यायालय ने उपरोक्त तीन अभियुक्तों के खिलाफ आरोप विरचित किए और मुकदमे की सुनवाई आगे बढ़ी, हालांकि इसमें असामान्य रूप से देरी हुई क्योंकि 15 साल से अधिक बीत चुके हैं। जैसा भी हो, अभियोजन पक्ष ने वर्ष 2009 में किसी समय पीडब्लू-1 भरत लाल, पी डब्लू-2 कमला, पी डब्लू-3 लखपत, पी डब्लू-4 हरकेश और पी डब्लू-5

अमृतलाल सहित 23 गवाहों का परीक्षण कराया। दिनांक 26.03.2014 को अर्थात उपरोक्त गवाहों की परीक्षण के पांच साल बाद, शिकायतकर्ता ने द.प्र.सं. की धारा 319 के तहत आवेदन दायर किया। यह वह आवेदन है जिसे विशेष न्यायाधीश ने स्वीकार किया और उक्त आदेश की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है।

6) श्री सुशील कुमार जैन, अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता ने सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत अधिकारियों से अनुसंधान अधिकारी द्वारा किए गए अनुसंधान की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त की थी, जो अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने तक थी। उन्होंने हमारा ध्यान 19.02.2016 के पत्र की ओर दिलाया, जो अपीलकर्ता द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत उनके प्रश्न के जवाब में प्राप्त किया गया था, जिसमें अनुसंधान के दौरान एकत्र किए गए अपेक्षित दस्तावेजों के साथ अपीलकर्ता को जानकारी दी गई थी। इन दस्तावेजों का विवरण इस प्रकार हैः

(i) सहायक पुलिस महानिरीक्षक (प्रशिक्षण), जयपुर, राजस्थान द्वारा हस्ताक्षरित दिनांक 04.05.2000 का ड्यूटी प्रमाण पत्र संख्या 2407 यह प्रमाणित करता है कि बृजेन्द्र सिंह, कनिष्ठ चालक 29.04.2000 को ड्यूटी पर उपस्थित था।

(ii) चिकित्सा अधिकारी, प्राथमिक चिकित्सा केंद्र, मोती कोटला, जयपुर द्वारा दिनांक 28.04.2000 को जारी चिकित्सा प्रमाण पत्र संख्या 13365, यह प्रमाणित करते हुए कि जगदीश सिंह 24.04.2000 को (अस्पष्ट) रोग से पीड़ित थे और उन्हें पांच दिन के विश्राम की सलाह दी गई थी।

(iii) 17 फरवरी, 2002 का करौली जिले के पुलिस अधीक्षक द्वारा हस्ताक्षरित पत्र, जो सर्कल ऑफिसर, कैलादेवी को संबोधित था, जिसमें द.प्र.सं. की धारा 173 (9) के तहत सीआर संख्या 53/2, पुलिस स्टेशन, सपोत्रा में अनुसंधान समाप्त करने और अदालत में रिपोर्ट प्रस्तुत करने की मंजूरी दी गई थी।

(iv) राजेन्द्र प्रसाद, पुलिस उप महानिरीक्षक, पुलिस मुख्यालय, जयपुर का 07 दिसंबर, 2000 को द.प्र.सं.की धारा 161 के तहत दर्ज बयान, जिसमें उन्होंने कहा कि 29.04.2000 को वह सहायक पुलिस महानिरीक्षक (प्रशिक्षण), जयपुर, राजस्थान के पद पर कार्यरत थे और कांस्टेबल बृजेन्द्र सिंह, उनके ड्राइवर थे, जो उस दिन ड्यूटी पर मौजूद थे। बृजेन्द्र सिंह की उपस्थिति दर्शाने के लिए वाहन की लॉग बुक भी प्रस्तुत की गई।

(v) सरकारी आयुर्वेदिक अस्पताल, नाहाटी का नाका की प्रभारी श्रीमती शशि राजावत के द.प्र.सं.की धारा 161 के तहत दर्ज बयान, जिसमें उन्होंने कहा था कि रिकॉर्ड के अनुसार एक भानु प्रताप सिंह 26 अप्रैल, 2000 को अस्पताल में आया था, वह बीमारी से पीड़ित था क्योंकि उसे दस्त हो रहे थे और उल्टी भी हो रही थी। उक्त चिकित्सा अधिकारी द्वारा उसका

इलाज किया गया था और उसके द्वारा पर्ची पर दवाएं भी लिखी गई थीं। उसने दवा पर्ची का सत्यापन भी किया था।

(vi) जयपुर के मोती कटला स्थित सरकारी अस्पताल के सामने स्थित जैन मेडिकल स्टोर के श्री नवील कासलीवाल का बयान द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया है, जिसमें कहा गया है कि उक्त मेडिकल स्टोर उनके स्वामित्व में था।उसने यह सत्यापित किया कि सरकारी अस्पताल की चिकित्सा पर्ची सुधीर शर्मा द्वारा 29.04.2000 को लिखी गई थी और उसके आधार पर उसने दवाईयां दी थीं।

(vii) सरकारी अस्पताल, मोती कटला, जयपुर के चिकित्सा अधिकारी सुधीर शर्मा के बयान को द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया, जिसमें उन्होंने कहा कि 22.02.2000 से 04.05.2000 तक उनकी ड्यूटी विधानसभा में अपराह्न 3.00 बजे से शाम 7.00 बजे तक और सरकारी अस्पताल में सुबह 8.00 बजे से दोपहर 12.00 बजे तक थी। उन्होंने आगे कहा कि 29.04.2000 को मलेरिया बुखार से पीड़ित जगदीश सिंह नाम का एक मरीज आया था और उसे पर्ची पर सरकारी अस्पताल की दवाइयां लिख कर दी गई थी। उन्होंने सत्यापित किया कि पर्ची उनके द्वारा लिखी गई थी, जिसमें दवाइयाँ लिखी थी।मरीजों को तीन दिन की दवाएं दी गईं थी। 02 मई, 2000 को, फिर से उक्त पर्ची पर रोगी के लिए दो दिन की दवाएं लिखी गई थीं।

(viii) राजकीय जिला महिला चिकित्सालय, सांगानेरी गेट, जयपुर में चालक के पद पर कार्यरत श्री महेन्द्र सिंह तंवर का द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत बयान दर्ज किया गया। उन्होंने बताया कि उनके बड़े भाई का पुत्र भानु प्रताप सिंह जो कि विद्यार्थी था, अप्रैल 2000 में 15 से 20 दिन बीमार था। इस उद्देश्य के लिए, निजी अस्पताल में उसका इलाज किया गया, लेकिन कोई सुधार नहीं पाया गया और इसलिए उसे इलाज के लिए 26.04.2000 को आयुर्वेदिक अस्पताल ले जाया गया। वह दस्त और खांसी से पीड़ित था जिसके लिए उसे तीन दिन की दवाइयाँ दी गई थीं और दवाइयाँ 29.04.2000 को फिर से तीन दिन के लिए दोहराई गईं थी।

7) श्री जैन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि यह पूर्वोक्त दस्तावेजों और विभिन्न व्यक्तियों के बयानों के आधार पर जो अनुसंधान के दौरान दर्ज किए गए थे, में अनुसंधान अधिकारी को विश्वास था कि ये तीन अपीलार्थी घटना के समय जयपुर में थे और इसलिए, वे घटनास्थल अर्थात् करौली में उपस्थित नहीं हो सकते थे, जो जयपुर से लगभग 176 किलोमीटर की दूरी पर है। श्रीमान जैन की दलील थी कि केवल शिकायतकर्ता के बयान के आधार पर, जो अनुसंधान अधिकारी के समक्ष भी अनुसंधान के समय था, विशेष न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत आवेदन को स्वीकार नहीं कर सकता था क्योंकि न्यायालय के समक्ष कोई और या नई सामग्री पेश नहीं की गई थी जो अपीलार्थियों की संलिप्तता को इंगित कर सकती थी। विद्वान अधिवक्ता

ने तर्क दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, जो स्वविवेकीय और असाधारण प्रकृति की थी, विचारण न्यायालय को स्वयं को आश्वस्त करना चाहिए था कि इस बात का संकेत देने वाला मजबूत और ठोस सबूत है कि अपीलार्थी अपराध करने का दोषी हो सकता है। यह स्थिति, उनके अनुसार संतोषजनक नहीं थी। उन्होंने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने भी इस मामले की पूर्वोक्त परिप्रेक्ष्य से जांच नहीं की और केवल इस तथ्य को देखा कि गवाहों ने अदालत के समक्ष अपने बयान में अपीलार्थियों की भागीदारी के बारे में बयान दिया है।

8) दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने अपने समक्ष गवाहों के बयानों के आधार पर अपनी शक्ति का सही प्रयोग किया है, जो इस प्रभाव के लिए 'साक्ष्य' के रूप में थे कि अपीलकर्ताओं ने प्रश्नगत अपराध किया हो। यह तर्क दिया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के प्रावधान केवल इस उद्देश्य के लिए नहीं थे और विचारण न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग को अवांछित नहीं माना जा सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा भी पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते हुए और यह देखते हुए कि विचारण न्यायालय के आदेशों में कोई अवैधता या विकृति नहीं पाई गई, ऐसा मत व्यक्त किया गया था।

9) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन न्यायालय की कार्यवाही करने की शक्तियों को उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी, जिन्हें अभियुक्त के

रूप में आरोपित नहीं किया गया है, विवादित नहीं किया जा सकता। यह प्रावधान इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए है कि वास्तविक अपराधी को बिना सजा दिए नहीं छोड़ा जाना चाहिए। इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2014) 3 एस सी सी 92** में इस प्रावधान के पीछे के उपर्युक्त उद्देश्य को निम्नलिखित तरीके से समझायाः

> "8. भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 के तहत संवैधानिक जनादेश न्यायाधीश के सुचारू प्रशासन के लिए एक सुरक्षात्मक छतरी प्रदान करता है, ताकि निष्पक्ष और प्रभावी विचारण सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रावधान किए जा सकें, ताकि आरोपी को अपराध के लिए मुकदमा चलाने के लिए कानून बनाए जाने के बाद प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, लेकिन साथ ही पीड़ितों और बड़े पैमाने पर समाज को समान सुरक्षा भी प्रदान की जा सके ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि दोषी कानून के चंगुल से बच न सके। न्यायालयों के सशक्तिकरण के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्याय का आपराधिक प्रशासन ठीक से काम करता है, दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत विधायिका द्वारा कानून को उचित रूप से संहिताबद्ध

और संशोधित किया गया था, जिसमें यह संकेत दिया गया था कि अदालतों को अंततः सच्चाई का पता लगाने के लिए कैसे आगे बढ़ना चाहिए ताकि निर्दोष को दंडित नहीं किया जा सके, लेकिन साथ ही दोषी को कानून के कटघरे में लाया जाए। संविधान और हमारे कानूनों के तहत स्थापित इन आदर्शों के कारण ही कई निर्णय लिए गए हैं, जिनके माध्यम से वास्तविक सच्चाई का पता लगाने और यह सुनिश्चित करने के लिए नए तरीके और प्रगतिशील साधन तैयार किए गए हैं कि दोषी को सजा मिले।

x x x

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 में सिद्धांत ***judex damnatur cum nocens absolvitur*** (न्यायाधीश की निंदा की जाती है जब दोषी को दोषमुक्त किया जाता है) उत्पन्न हुआ है और इस सिद्धांत का उपयोग दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधिनियमन की परिधि और भावना को स्पष्ट करते हुए प्रकाश स्तंभ के रूप में किया जाना चाहिए।

13. यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधी को दंडित करके न्याय करे जहां अन्वेषण अभिकरण किसी कारण से किसी एक वास्तविक अपराधी को अभियुक्त के रूप में नहीं रखता है, वहां न्यायालय उक्त अभियुक्त को विचारण का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। प्रश्न यह है कि किन परिस्थितियों में और किस चरण में न्यायालय को अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 में परिकल्पित है?

x x x

19. न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार गृह है और विधि के शासन को बनाए रखने का कर्तव्य उस पर है और इसलिए हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में न्यायालयों की ऐसी शक्तियों के अस्तित्व से इंकार करना अनुचित होगा जहां यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक अभियुक्त कभी-कभी अनुसंधान और/या अभियोजन अभिकरण में हेरफेर करके बच निकलता है। विचारण से बचने की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि एक अभियुक्त कई बार अन्वेषण या पूछताछ के

स्तर पर भी स्वयं को दोषमुक्त करने का प्रयास करता है, भले ही वह अपराध के कारित किए जाने से जुड़ा हो।"

10) यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319, जो न्यायालय को किसी व्यक्ति के विरुद्ध, जो अभियुक्त नहीं है, कार्यवाही करने के लिए समुचित कदम उठाने के लिए सशक्त करने वाला उपबंध है, का प्रयोग आरोप-पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् और निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है, सिवाय दंड प्रक्रिया संहिता की 207/208, सुपुर्दगी आदि के प्रक्रम के, जो प्रक्रिया को गति में लाने के आशय से केवल विचारण-पूर्व प्रक्रम है।

(11) **हरदीप सिंह के मामले में**, संविधान पीठ ने इस मुद्दे पर विवाद का भी निपटारा कर दिया है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 (1) में प्रयुक्त 'साक्ष्य' शब्द का व्यापक अर्थ में उपयोग किया गया है और यह अनुसंधान के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य को इंगित करता है या 'साक्ष्य' शब्द विचारण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य तक सीमित है। यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि न्यायालय द्वारा संज्ञान लिए जाने के पश्चात् यह सामग्री उसके पास किसी अपराध की जांच करते समय या विचारण करते समय उपलब्ध होती है, जिसका न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर किसी व्यक्ति को समन करने के लिए सहायक कारणों पर विचार करने के लिए न्यायालय उपयोग कर सकता है।

मुकदमे के चरण में और यहां तक कि जांच के चरण में भी 'साक्ष्य' शब्द को उसके व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि सम्मन जारी करने के बाद किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने की शक्ति का प्रयोग उसके समक्ष प्रस्तुत की गई किसी भी सामग्री के आधार पर किया जा सकता है। साथ ही, इस न्यायालय ने आगाह किया कि न्यायालय का कर्तव्य और दायित्व विचारण के दौरान साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद ऐसी सामग्री पर सचेत रूप से ऐसी शक्तियों का आह्वान करना अधिक कठिन हो जाता है। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन 'साक्ष्य' मुख्य परीक्षा भी हो सकता है और न्यायालय को प्रतिपरीक्षा पर ऐसे साक्ष्य का परीक्षण किए जाने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह न्यायालय की संतुष्टि है जो अपराध में विचारण का सामना न करने वाले किसी अन्य व्यक्ति की संलिप्तता के संबंध में न्यायालय द्वारा अभिलिखित कारणों से एकत्र किया जा सकता है।

12) विवादास्पद प्रश्न, हालांकि, संतुष्टि का स्तर है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए आवश्यक है। और संबंधित प्रश्न यह है कि प्राथमिकी में नामित लेकिन उस व्यक्ति के संबंध मे जिसके विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया हो, के संबंध में किन स्थितियों में इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

**हरदीप सिंह के मामले में** संविधान पीठ ने इन दो पहलुओं पर भी विशेष रूप से विचार किया और निम्नलिखित तरीके से उत्तर दिया:

> "95. संज्ञान लेते समय, न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए प्रथमदृष्टया मामला बनता है या नहीं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत, हालांकि प्रथमदृष्टया मामले का परीक्षण समान है, लेकिन संतुष्टि का स्तर बहुत सख्त है। इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **विकास बनाम राजस्थान राज्य [(2014) 3 एस. सी. सी. 321]** में अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय की वस्तुनिष्ठ संतुष्टि पर किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता है या समन किया जा सकता है, जैसा कि मामले की परिस्थितियों में अपेक्षित हो, यदि साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो अभियुक्त नहीं है, ने एक अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का पहले से ही आरोपित अभियुक्त व्यक्तियों के साथ मिलकर विचारण किया जा सकता है।
>
> x x x

105. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति एक विवेकीय और असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग बहुत कम और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक हो। इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जब मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल वहां जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और ठोस साक्ष्य होता है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए न कि आकस्मिक और लापरवाही पूर्ण तरीके से।

106. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि केवल एक प्रथम दृष्टया मामला अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से स्थापित किया जाना है, जिसका परीक्षण प्रतिपरीक्षा के दौरान किया जाना आवश्यक नहीं है, किंतु इसके लिए उसकी संलिप्तता की मात्र संभाव्यता से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है जो परीक्षण लागू किया जाना है वह ऐसा है जो आरोप

की विरचना के समय किए गए प्रथमदृष्टया मामले से अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि यदि साक्ष्य का खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि होगी। "इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति का उपयोग करने से बचना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 में यह प्रदान करने का उद्देश्य है कि "साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने जो आरोपी नहीं है उसने कोई अपराध किया है" शब्दों से स्पष्ट है "तो जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर आरोपी के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" इस्तेमाल किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके। इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अदालत के लिए आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

**(जोर दिया गया)**

13) प्रश्न का उत्तर देने के लिए, **हरदीप सिंह के मामले में** कुछ सिद्धांतों को दोहराया जा सकता है:

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा विचारण के दौरान किसी भी प्रक्रम पर अर्थात् विचारण की समाप्ति से

पूर्व, किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में समन करने और चल रहे मामले में विचारण का सामना करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, एक बार जब विचारण न्यायालय यह पाता है कि ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कोई 'साक्ष्य' है जिसके आधार पर यह साक्ष्य एकत्रित किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है। इसमें 'साक्ष्य' से वह सामग्री अभिप्रेत है जो विचारण के दौरान न्यायालय के समक्ष लाई जाती है। जहां तक अनुसंधान के चरण में आई ओ द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का संबंध है, इसका उपयोग पुष्टि के लिए और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए न्यायालय द्वारा रिकॉर्ड किए गए साक्ष्य का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। नि:संदेह, ऐसे साक्ष्य जो प्रमुख पूछताछ में बिना गवाहों के जिरह के सामने आए हैं, उन पर भी विचार किया जा सकता है। हालांकि, चूंकि यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन न्यायालय को दी गई स्व-विवेकीय शक्ति है और यह एक असाधारण शक्ति भी है, इसलिए इसका प्रयोग बहुत कम और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां ऐसी हों। संतुष्टि के स्तर उस स्तर से अधिक है जो उन लोगों के खिलाफ आरोप तय करते समय आवश्यक है जिनके संबंध में आरोप पत्र दायर किया गया था। केवल वहां जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और ठोस साक्ष्य होता है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका उपयोग आकस्मिक या लापरवाही पूर्ण तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथमदृष्टया जो राय

बनाई जानी है उसमें उसकी संलिप्तता की संभावना की तुलना में मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है।

14) जब हम उपर्युक्त सिद्धांतों को इस मामले के तथ्यों में उनके अनुप्रयोग के साथ अनुवादित करते हैं, तो हमें यह आभास होता है कि विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ समन आदेश पारित करने में एक आकस्मिक और उपेक्षापूर्ण तरीके से काम किया। प्राथमिकी में अपीलकर्ताओं के नाम थे। पुलिस द्वारा अनुसंधान किया गया था। अनुसंधान के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, जिसे हमने ऊपर संदर्भित किया है, आई. ओ. ने पाया कि ये अपीलकर्ता 175 किलोमीटर की दूरी पर कनौर में हुई घटना के समय जयपुर शहर में थे। शिकायतकर्ता और अन्य जिन्होंने घटना के स्थान पर अपीलकर्ताओं की कथित उपस्थिति के बारे में प्राथमिकी में मूल पाठ का समर्थन किया था, उन्होंने भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत इसी आशय के बयान दिए थे। इसके बावजूद, पुलिस अनुसंधान से पता चला कि घटनास्थल पर अपीलकर्ताओं की उपस्थिति के संबंध में इन व्यक्तियों के बयान संदेहपूर्ण थे और आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं किया गया था अनुसंधान के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजी और अन्य साक्ष्यों को देखते हुए, जिसमें एक और कहानी वर्णित की गई थी और दृढ़ता से दिखाया गया था कि अपीलकर्ता की अन्यत्र उपस्थिती की दलील सही थी।

15) यह रिकॉर्ड विचारण न्यायालय के समक्ष था। इसके बावजूद, विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के मुख्य परीक्षण के बयानों को माना था, उनके तथाकथित मौखिक/आंखों देखे हाल के समर्थन के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं थी। इस प्रकार, विचारण के दौरान अभिलिखित 'साक्ष्य' उन बयानों से ज्यादा कुछ नहीं थे जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अंतर्गत मामले के शिकायत कर्ता के बयान अनुसंधान के समय अभिलिखित किए गए थे। निःसंदेह, मुख्य परीक्षा में उसके समक्ष दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी विचारण न्यायालय अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सक्षम होगा। हालांकि, वर्तमान जैसे मामले में, जहां अनुसंधान अधिकारी द्वारा जांच के दौरान बहुतायत मात्रा मे साक्ष्य एकत्र किया गया था, जिसमें अन्यथा सुझाव दिया गया था, विचारण न्यायालय का कम से कम यह कर्तव्य था कि वह प्रथमदृष्टया राय बनाते समय इस पर विचार करे और यह देखे कि क्या उनकी (अर्थात् अपीलार्थियों) सहभागिता की मात्र संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य अभिलेख पर आ गया है। इस प्रकार की कोई संतुष्टि नहीं है। यहां तक कि अगर हम यह मान भी लें कि विचारण न्यायालय को उस समय इसकी जानकारी नहीं थी जब उसने आदेश पारित किया था (क्योंकि अपीलकर्ता उस समय घटनास्थल पर नहीं थे), तो इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि जब इस सामग्री को विशेष रूप से

अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था, तब उच्च न्यायालय ने भी उक्त सामग्री की अनदेखी की थी। विचारण न्यायालय के आदेश में निहित चर्चा को दोहराने और उसके साथ सहमति व्यक्त करने के अलावा और कुछ नहीं किया गया है। ऐसे आदेश न्यायिक जांच में नहीं ठहर सकते है।

16) परिणामस्वरूप, इस अपील को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अपीलकर्ताओं को समन करने के आदेश को रद्द करने की अनुमति दी जाती है।

**न्यायाधीश (ए. के. सीकरी )**

**न्यायाधीश (अशोक भूषण )**

**नई दिल्ली**

**16-अप्रैल-2017**

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'SUVAS' के जरिए अनुवादक की सहायता से किया गया है।

**अस्वीकरण** : यह निर्णय वादी के प्रतिबंधित उपयोग के लिए इसे उसकी भाषा में समझाने के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।